विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK – 64

वर्ष ६ • बम्बई : बुद्धवर्ष २५२१ • ज्येष्ठ पूर्णिमा [शक] • दि. २-६-१९७७ • अंक १२

उद्बोधन

मेरे प्यारे साधक–साधिकाओ !

आओ, धर्म–शरण ग्रहण करें।

बड़ी मंगलकारिणी है धर्म की शरण !

धर्म सत्य है, ऋत है, विश्वविधान है, कुदरत का कानून है सजीव व निर्जीव, सभी धर्म पर आधारित हैं। अणु अणु को, पिंड पिंड को, ब्रह्माण्ड ब्रह्माण्ड को धर्म ही धारण किए हुए है। अणु, पिंड, ब्रह्मांड धर्म को ही धारण किए हुए हैं।

धर्म असीम, अनंत, अपरिमित है ! घट घट में बसा हुआ, अणु-अणु में समाया हुआ है ! सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर है ! जगदीश्वर, जगदाधार, जगतनियन्ता है ! धर्म सचमुच अशरण-शरण है !

साधको ! जीवन में जब-जब संकट आए, आंधी आए, तूफान आए, बेसहारापन आए, किंकर्तव्य–विमूढ़ता आए तब–तब धर्म की शरण ग्रहण करना सीखें। बड़ी राहत मिलती है धर्म की शरण में। जब कभी पैशाचिक प्रभंजन निर्मम अट्टहास करता हो, असीम जल–प्लावन भयानक रौरव का रूप धारण कर लेता हो, शान्त जलधि में महाज्वार उमड़ पड़ता हो, चारों ओर उत्ताल तरंगें विषधर नाग की तरह फुन्कारने लगती हों, विनाशकारी जल–भ्रमर सब को अपने भीतर लीलने के लिए व्यग्र हो उठता हो, तब आदमी के सभी सहायक कन्नी काट जाते हैं, सभी संबंधी बगले झांकने लगते हैं, सभी सहयोगी तोते की तरह आंख बदल लेते हैं, जन्म जन्म के साथी मुंह मोड़ लेते हैं, बंधु–बांधव अपने अपने प्राण बचाने में लग जाते हैं, सभी डूबते हुए किसी न किसी तिनके का सहारा खोजने में लगे रहते हैं। सारा अपनापन हवा हो जाता है। स्वजन, परिजन पराए बन जाते हैं। ऐसे समय, साधको ! एकमात्र धर्म ही सहायक होता है। धर्म ही बेड़े का काम करता है, द्वीप का काम करता है। धर्म की शरण ही सच्ची शरण होती है। जब दुर्बल व्यक्ति थका मांदा होने के कारण अपने आप को बचाने के लिए हाथ–पांव भी नहीं चला पाता, कहीं किसी ओर किसी तिनके का सहारा भी नहीं पाता तो अपने आपको धर्म के बहाव में बहने के लिए छोड़ देता है। और जहां समर्पित भाव से धर्म के बहाव में बहने लगता है, वहीं धर्म कवच की तरह संरक्षक बन जाता है। धर्म कभी धोखा नहीं देता, कभी विश्वासघात नहीं करता, कभी नीचे की ओर नहीं धकेलता। साधको ! जरा धर्म के प्रति समर्पण करना तो सीखें।

धम्म वाणी

नत्थि मे सरणं अञ्ञं धम्मो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्च वज्जेन भवतु सब्ब मङ्गलं ॥

—"मैं किसी अन्य की शरण ग्रहण नहीं करता। केवल धर्म की ही उत्तम शरण ग्रहण करता हूं।"— इस सत्य वचन के प्रताप से सबका मंगल हो ! मंगल हो !!

साधकों ! मैं सुनी – सुनाई या पढ़ी – पढ़ाई बात नहीं कहता। अपने अनुभव की बात कहता हूं। सचमुच ! बड़ी राहत मिलती है, धर्म के प्रति समर्पित होने में, धर्म की शरण जाने में।

पर अमूर्त धर्म की शरण जाना कठिन काम है। हम सदा से किसी न किसी मूर्त व्यक्ति की ही शरण जाने के आदी रहे हैं न ! और व्यक्ति, जो भी हो, बेचारा स्वयं ससीम, स्वयं षांत, स्वयं असुरक्षित, स्वयं अशरण है ! दूसरे को भला क्या शरण देगा ? किसी शरणार्थी को समीप आया देख, स्वयं अपनी गठरी–मुठरी संभालने लगेगा। अपनी सुरक्षा की चिंता करने लगेगा। दुर्बल दुर्बल की क्या सहायता करेगा ? अनाथ अनाथ को क्या सहयोग देगा ? अंधा अंधे को क्या रास्ता दिखायेगा ?

अतः सबल और सक्षम अमूर्त धर्म की ही सहायता लें। धर्म की ही शरण ग्रहण करें ! कुछ देर के लिए ही सही, जरा निस्पृह होकर धर्म के बहाव में जीवन को बहने देने के लिए खुला छोड़कर तो देखें। बड़ा आत्मबल प्राप्त होगा, बड़ा आत्मविश्वास जागेगा। अपने आपको बहाव के सहारे छोड़ना नए संस्कार बनाने बंद करना है। इसीसे पुरानों की निर्जरा का रास्ता खुलता है और पूर्व कर्मों के फलस्वरूप आए तूफान का बल अपने आप क्षीण होने लगता है। यही धर्म की शरण जाना है।

देखें, संकट के समय इसे आजमाकर देखें। भविष्य आनंद मंगल से भर उठेगा। दिशाएं हर्ष-उमंगों से नाचने लगेंगी। देखते–देखते सारी निराशा काफूर हो जायेगी। सारा वातावरण कल्याण की तरंगों से तरंगित हो उठेगा।

इसीलिए साधको आओ ! धर्म की शरण ग्रहण करें ! सचमुच बड़ी मंगलदायिनी है धर्म की शरण !

मंगल मित्र,

स. ना. गो.

कर्म-सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में :-

विपश्यना : दुःख-मुक्ति का मार्ग

कन्हैयालाल लोढ़ा, एम. ए.

(गतांक से आगे)

मोहनीय कर्म का क्षय

विपश्यना के अभ्यास से जैसे-जैसे समता व सूक्ष्म अनुभव की शक्ति बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे राग-द्वेष-मोह आदि से उठने वाली लहरों का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। साधक यह भी देखने लगता है कि राग-द्वेष से नवीन ग्रंथियों का निर्माण होता है। ये ग्रंथियां समय पाकर फल देती हैं—इनसे तन-मन का सर्जन होता है, जन्म-मरण व सुखद-दुःखद संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करने से राग द्वेष उत्पन्न होते हैं, फिर नवीन ग्रंथियों का निर्माण होता है। फिर सुखद-दुःखद संवेदनाओं की उत्पत्ति होती है और इस प्रकार जन्म-मरण का यह क्रम बार-बार चलने लगता है। यही भव-भ्रमण अनंत काल से चल रहा है। तथा वह यह भी अनुभव करने लगता है कि लहर द्वेष की उठे या राग की उठे अथवा अन्य किसी भी प्रकार की उठे, उससे समताजनित शांति, सुख, स्वाधीनता, संतुष्टि लोप हो जाती है और अशांति, क्षुब्धता व आकुलता, आतुरता रूपी दुःख का उदय हो जाता है। इस प्रकार जहां वह पहले राग, द्वेष, मोह, हिंसा, झूठ आदि दोषों में सुख का आस्वादन करता था वहां अब इनमें दुःख का अनुभव करने लगता है।

इस प्रकार विपश्यक इस परिणाम पर पहुंचता है कि दुःख या भव-चक्र भेदन का एक ही उपाय है कि नवीन ग्रंथियों का निर्माण न हो और पुरानी ग्रंथियों का भेदन हो जाय उदीरणा होकर उनकी निर्जरा हो जाय।

नवीन ग्रंथियों का निर्माण पुराने कर्म के फल भोगते समय राग-द्वेष रूपी प्रतिक्रिया करने से होता है। अतः नवीन ग्रंथियों के निर्माण को रोकने का एक ही उपाय है कि पुराने कर्मों के फल स्वरूप उत्पन्न सुखद संवेदनाओं से राग न करे, दुःखद संवेदनाओं से द्वेष न करे अर्थात् समता (द्रष्टाभाव) में रहे। इस प्रकार समता में रहने पर संवर से नवीन ग्रंथियों (कर्मों) का निर्माण रुक जाता है।

पुरानी ग्रन्थियों (कर्मों) के नाश का उपाय है ग्रंथियों का भेदन करना। तन, मन, धन, जन आदि सब से आसक्ति (राग-द्वेष) छोड़ना, समता में रहना यह स्थूल ग्रंथि-भेदन है। सूक्ष्म शरीर, चित्त, अवचेतन मन आदि के स्तर पर प्रकट व उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं (ग्रंथियों) का धुन-धुनकर विभाजन करना, टुकड़े-टुकड़े करना, यह सूक्ष्म ग्रंथियों का भेदन है। इस ग्रंथि-भेदन से पुराने कर्मों के समुदाय की तीव्रता के साथ उदीरणा होकर निर्जरा होती है।

इस ग्रंथि-भेदन में ध्यान (चित्त की एकाग्रता), स्वाध्याय (स्व का अध्ययन, स्वानुभव), कायोत्सर्ग (सूक्ष्मतर स्तर पर तन-मन का उत्सर्ग करना, अहंभाव का विसर्जन करना) एक साथ होता है। इससे राग-द्वेष व मोह पर विजय मिलती है अर्थात् राग, द्वेष, माया-मोह के प्रवाह का प्रभाव घटता जाता है। यह विजय साधक के उत्साह, सुख, समता, शांति, स्वाधीनता को बढ़ाती है जिससे उसमें राग, द्वेष पर अधिक विजय पाने का पुरुषार्थ जगता है। इस प्रकार धर्मचक्र से वह धीरे-धीरे समता की चरम अवस्था में पहुंचकर राग, द्वेष, मोह आदि विकारों पर पूर्ण विजय पाकर वीतराग, वीतद्वेष और वीतमोह हो जाता है। उसका कर्तृत्व, भोक्तृत्व समाप्त हो जाता है और केवल ज्ञान, केवल दर्शन रह जाता है।

अन्तराय कर्म का क्षय

विपश्यना साधना से जैसे-जैसे राग-द्वेष-मोह घटते जाते हैं, समताभाव बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे अनुभव के क्षेत्र में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर प्रगति होती जाती है तथा आंतरिक शक्तियां व अनुभूतियां विशेषरूप से प्रकट होती जाती है। आंतरिक शक्ति के बढ़ने से उसका पुरुषार्थ-वीर्य बढ़ता है जो उत्साह के रूप में प्रकट होता है और उद्देश्य या लक्ष्य की सिद्धि या सफलता प्राप्ति में सहायक होता है।

आंतरिक शक्ति जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे अधिक से अधिक सूक्ष्म संवेदनाओं की अनुभूति बढ़ती जाती है जो समत्व व प्रीति व प्रमोद के रूप में व्यक्त होती है।

विपश्यना से विरतिभाव बढ़ता है जो कामनाओं, वासनाओं कृत्रिम आवश्यकताओं को घटाता है। इनकी उत्पत्ति न होने से साधक को इनकी अपूर्ति से होनेवाला दुःख नहीं भोगना पड़ता। संतुष्टि व तृप्तिभाव की अभिवृद्धि होती है तथा उसकी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः हो जाती है। यह प्राकृतिक नियम है कि जो प्राप्त का सदुपयोग करता है उसे उससे अधिक हितकर वस्तुओं की प्राप्ति अर्थात लाभ अपने आप होता है। अभाव का दुःख उसे पीड़ित नहीं करता। उसका चित्त सदा समृद्धि से भरा होता है।

विपश्यना साधना से जैसे-जैसे राग पतला पड़ता जाता है वैसे-वैसे स्वार्थपरता, संकीर्णता घटती जाती है; सेवाभाव, करुणाभाव, परोपकार और दान की भावना बढ़ती जाती है।

जैसे-जैसे राग-द्वेष, मोह क्षीण होता जाता है वैसे-वैसे दुर्गुण रूप अंतराय कर्मों का क्षय होता है और आंतरिक सद्गुणों की अधिकाधिक अभिवृद्धि होती जाती है। पूर्ण वीतराग अवस्था में ये गुण असीम व अनंत हो जाते हैं।

इस प्रकार विपश्यना से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय कर्म क्षीण होते हैं। इन चारों का परस्पर इतना घनिष्ट संबंध है कि इनमें किसी एक कर्म के क्षीण होने का प्रभाव शेष तीन कर्मों पर भी पड़ता है और उनमें भी क्षीणता आती है।

उपर्युक्त चार कर्मों का संबंध अपने ही गुण, ज्ञान, दर्शन, पवित्रता व वीर्य से है। इन कर्मों के कारण इन गुणों में विकृति व न्यूनता आती है। इन कर्मों के क्षीण होने से इन गुणों में वृद्धि होती है और पूर्ण क्षीण होने पर इन गुणों में असीमता, पूर्णता आ जाती है।

उपर्युक्त चार कर्मों के अतिरिक्त नाम, गोत्र, आयु, वेदनीय ये चार कर्म और हैं। ये कर्म शरीर, इंद्रिय आदि भौतिक या बाहरी पदार्थों से संबंधित हैं। यह नियम है कि भीतरी स्थिति के अनुरूप ही बाहरी स्थितियों एवं परिस्थितियों का निर्माण होता है या यों कहें कि चेतना की सूक्ष्म शक्तियों व गुणों के न्यूनाधिकता के अनुरूप ही प्रकृति भौतिक पदार्थों, शरीर, इंद्रिय आदि की संरचना करती है यही नाम कर्म है। नाम कर्म से उत्पन्न शरीर के टिकने की अवधि आयुकर्म है। शरीर से संबंधित जन्म-जात संस्कार गोत्र कर्म है और शरीर चित्त आदि के माध्यम से होने वाली सुखद-दुखद संवेदनाएं वेदनीय कर्म हैं। इन चारों कर्मों की उत्पत्ति का कारण भी राग, द्वेष, मोह ही है। यह जैसे-जैसे हटते जाते हैं, आत्मशुद्धि बढ़ती जाती है। इसका प्रभाव नाम, गोत्र, आयु व गोत्र के निर्माण करने वाले कर्मों का बंध रुक जाता है और पुराने कर्म उदय व उदीरणा को प्राप्त होकर निर्जरित हो जाते हैं। तदनंतर कर्मातीत अवस्था प्राप्त होती है। इसे ही निर्वाण कहा गया है—नितांत दुःख-निरोध की अवस्था, जो अनिर्वचनीय है, केवल अनुभवगम्य है।

विपश्यी कैदियों के उद्‌गार

इस दस रोज की साधना से मेरी मनोवृत्ति में काफी परिवर्तन हुआ। खुद को यह महसूस होता है कि कोई भी आदमी यदि अपने मन के मैल को साफ कर दे, अपनी आत्म-शक्ति के बल से देख कर, तो किसी प्रकार की बाधा में पड़े ही नहीं। विपश्यना साधना से मेरे मन में पहले से जो व्याकुलता रहती थी वह अब नहीं है। दूसरों के प्रति द्वेष-राग निकलने लगा है। मन को एकाग्र करने की विधि प्राप्त हो गई जो अपने किसी समय का पुण्य का फल है। ..... दिन पर दिन कुछ न कुछ सुधार मन के अन्दर हो ही रहा है। मन को एकाग्र करने से शरीर के भीतर का पता चलता है। जो भी प्रतिक्षण शरीर में संवेदना होती है उससे यह भी पता चलता है कि यह क्षण-भंगुर है। कभी न कभी सब को ही नष्ट होना है—क्यों किसी के प्रति द्वेष रखूं? मोह रखूं? जीवन जीने का रास्ता अनुभव हुआ है। कभी इस साधना को नहीं भूल सकूंगा।

मुन्नासिंह, अपराध-कत्ल, सजा-बीस वर्ष।

इस विपश्यना के करने से संपूर्ण शरीर में कभी खुजली, कभी सुरसुराहट, कभी भारीपन, कभी हल्कापन, कभी शीतल, कभी तरंग आदि के रूप में अंदर के पाप उखड़कर बाहर आए और मन के अन्दर जमे हुए राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि शत्रु भी। अन्तर्मुखी होकर झांकने से मालूम हुआ—उनकी जड़ उखाड़ने का रास्ता भी मालूम हुआ। चित्त की चेतन शक्ति बढ़ी और यह चेतन शक्ति गीता में बताई हुई समाधि में जाग्रत अवस्था ही है। यह अवस्था साधारण जाग्रत अवस्था नहीं, सुसुप्त अवस्था भी नहीं, स्वप्न अवस्था तो हो ही कैसे सकती है! क्यों कि स्वप्न अवस्था तो कल्पित होती है और यह प्रत्यक्ष है। यह तो समाधि में जाग्रत अवस्था है। इस अवस्था का जिस समय ज्ञान प्राप्त हुआ, उस समय गीताजी के श्लोक की स्मृति हुई—

या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्याम् जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनिः।।

इस अवस्था का तो अच्छी तरह अनुभव हुआ है और भी बहुत सी बातें शरीर के अन्दर हैं, उनका भी ज्ञान हुआ। इनमें कोई भी कल्पित अनुभव नहीं और भूत अथवा भविष्य शामिल नहीं। यही सत्य है। इस विपश्यना करने से बहुत से लाभ हुए। शांति आती है, मन की समता बढ़ती है। शरीर में सभी जगह मन की चेतना बढ़ती है। वास्तव में मन में समता आदि सभी गुण प्रकट होते हैं। सच्चा सुख वास्तव में इसी में है।

जो-जो भी शब्द गुरु मुख से निकलते थे वे बहुत ही महत्वपूर्ण थे। उनका हमारे मन पर बहुत ही प्रभाव पड़ा तथा हमारा मन अथवा हृदय बहुत ही निर्मल हुआ। बहुत प्रेमभरी तरंगे उठती हैं। हमको बहुत ही सुख का रास्ता मिल गया। हम सोचते हैं—भविष्य में हमसे कोई भी बड़ी गल्ती नहीं होगी।

झुनझुनराम, अपराध कत्ल, सजा-बीस वर्ष।

गुरुजी की शिक्षा आरंभ से ही बुद्धि में आने लगी। उसका उद्‌देश्य मन को एकाग्र करके दुःखों से छुटकारा पाने की जीवन जीने की कला सिखाना था। ..... निरंतर जागरूक अभ्यास से दूसरे-तीसरे दिन शांति मिलने लगी। सभी अंगों के विकार संवेदना के रूप में बाहर आने लगे। तथा दिन-रात के अभ्यास से पुराने विकारों से छुटकारा पाकर सुख अनुभव करने लगा। रोज का कार्यक्रम सर्वथा मानवता में परिवर्तन लाने वाला रहा। ..... वास्तव में विपश्यना कार्यक्रम एकदम ही मानवजीवन को परिवर्तित करनेवाला है। शरीर के सारे दोष धुलकर निर्मल हो जाता है। नया जीवन सा मिल गया। भविष्य में सच्चा जीवन जीना सीख लिया। मानव के शत्रुओं से छुटकारा पाने की कला सीख ली।

बलबीरसिंह यादव, अपराध-कत्ल, सजा-बीस साल।

गुरुजी ने हमको साधना सिखाई। उन्होंने हमको समझाया—सब धर्म के बारे में बताया और अपनी मुक्ति तथा दुःखों से छुटकारा पाने की विधि सिखाई। हम अपने मन में शांति उत्पन्न करने लगे। जहां द्वेषभाव पैदा होता था, वह अब कभी भी पैदा नहीं हो सकता। हर आदमी के प्रति प्यार की भावना हमारे दिल में भर दी। हमें पांच शील दिया। हमें शांति मिली।

भवानीसिंह, अपराध-हत्या, सजा-बीस साल।

ऐसा कैम्प पहली बार मिला। इससे मेरी आत्मा को बहुत ज्यादा ज्ञान मिला। जेल में होते हुए भी इस कैम्प का ज्ञान मिला। हमें अच्छे विचार करने की विधि प्राप्त हुई और मुक्ति का रास्ता मिला।

धर्मवीरसिंह, अपराध-कत्ल, सजा-२० साल।

आगामी शिविरों में परिवर्तन

किन्हीं अप्रत्याशित कारणों से पूर्व निश्चित शिविर क्रमांक १३९, १४१ और १४३ रद्द कर दिए गए हैं तथा मद्रास के लिए निश्चित शिविर क्रमांक १४० अब उन्हीं तिथियों पर (क्रमांक बदलकर) हैद्राबाद में होगा। निर्धारित शिविर निम्न प्रकार होंगे —

शिविर क्रमांक	१३९	**हैदराबाद** (वि. अ. सा. केन्द्र)	दिनांक १५–७–७७ से २६–७–७७ तक	(हिन्दी)
,, ,,	१४०	,, ,,	दिनांक २२–८–७७ से २–९–७७ तक	(,,)

संपर्क :– श्री रतीलाल एम. मेहता, द्वारा–**विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र,** कुसुम नगर, हैदराबाद ५०० ०३५ (आं. प्र.)
फोन नं. ५९२५९.

नोट :– १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से **पूर्व** शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किन्हीं कारणों से शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

मेसर्स प्रीमियर रेफ्रीजरेशन एण्ड इलेक्ट्रिकल्स
१०, जाम बाग रोड, हैदराबाद–५०० ००१. फोन नं. ४४२७३
की मंगल कामनाओं सहित

दोहे धर्म के

धरम जगत का ईश है, धरम ब्रह्म भगवान।
धरम सदा रक्षा करे, धरम बड़ा बलवान॥
एक शरण है धरम की, और शरण नहिं कोय।
सत्य वचन के तेज से, सबका मंगल होय॥
धरम शरण मंगल शरण, करे परम कल्याण।
धरम शरण अशरण-शरण, धरम सुखों की खान॥
अपना रक्षित धरम ही, अपना रक्षक होय।
धारण करलें धरम को, धरम सहायक होय॥
जब पासे उलटे पड़ें, कर मेहनत जी तोड़।
पर श्रम के परिणाम को, छोड़ धरम पर छोड़॥
जय हो! जय हो! धरम की, पाप पराजित होय॥
सारी विपदा संत की, त्वरित तिरोहित होय॥

दूहा धरम रा

कीं कै कीं कै पग पड़्यो, रह्यो रगड़तो नाक।
घर घर खायी ठोकरां, दर दर छाणी राख॥
रै! कीं कै आयो सरण, यो असरण है आप।
धरम एक असरण-सरण, धरम मांय अर बाप॥
निज पग पर हो कर खड़्यो, चाल धरम कै पंथ।
मिटसी सारी दीनता, होय दुखां को अंत॥
विपदा आयी देख कर, मत तड़पै मत रोय।
राख आसरो धरम को, सदा भलो ही होय॥
आंख बदल कर चल धरै, जद सारो संसार।
आगै पीछै धरम ही, मंगल को भंडार॥
ज्यूं ज्यूं ओसध धरम की, सेवण करतो जाय।
त्यूं त्यूं अपणै पाप की, ताप उतरती जाय॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : **मधु काबरा,** सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : **अक्षरचित्र मुद्रणालय** सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१
विज्ञापन : आधा पृष्ठ ४००/–, चौथाई पृष्ठ २०० /–, वार्षिक शुल्क रू. ५/, आजीवन शुल्क रू. ५१/–

"विपश्यना"

पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरी इगतपुरी, ४२२ ४०३.
(नासिक – महाराष्ट्र)

To